अध्याय - षष्ठ

--अपकर्म--

(रोला छंद)

कृतसंध्या[1] जब उठे, भीष्म चेटी[2] ने आकर
बद्धांजलि हो कहा, देव हों विजय प्रभाकर ।
राजजननिस्मृत आप, भवन में आशु पधारें ।
है किंचित कथनीय, अर्थ जिसको अवधारें[3] ।।1।।

योजनगंधा निलय, गये अज्ञात प्रयोजन ।
जहां जननि कर रही, विचारों का संयोजन ॥
कृत प्रणाम वे बैठ, गये उनके चरणों में ।
माता की थी दृष्टि, लगी बहु आभरणौ में ॥2॥

बोली भूषण व्यर्थ, न हो यदि धारणकर्ता ।
होता व्यर्थ नृपत्व, नहीं यदि बहु अनुसर्ता ।
शून्य न लगता पुत्र, तुम्हें क्या यह अंत:पुर ।
प्रभाहीन क्या नहीं, भासता है यह गजपुर ॥3॥

बोले हंसकर भीष्म, जान ली बात हृदय की ।
चिंता है हो रही, आपको सुत परिणय की ।
वधू कामना जगी, शीघ्रता क्यों इतनी है ।
अचिर क्रांत कैशोर्य[4], अभी वय ही कितनी है ? 4॥

नहीं सभी हैं भीष्म, करणनिग्रह बलषाली ।
सुत द्रुत है परिणेय[5], लगी कहने यह काली[6] ।
राजसुता अन्वेष्य, विश्रुत अन्वय[7] अनुरूपा।
सुरूचि सुशील सुप्रज्ञ, धर्मनिष्ठित शुभ रूपा ।5॥

हो संवर्धित वंश, कीर्ति फैले इस भू पर ।
यह गुरूतर दायित्व, तुम्हारे ही है ऊपर ।
कहने लगे नदीज[8], त्रिवेणी सी राजित है ।
काशिप[9] कन्या त्रयी, रूपगुण अपराजित है ॥6॥

1. संध्या कर चुके	5 विवाह योग्य
2 दासी, सेविका	6 सत्यवती
3 जानें, समझें	7 वंश
4 जिसने किशोरावस्था अभी हाल ही में पार की हो	8 भीष्म
	9 काशी नरेश

गंधवती[1] ने कहा, काषिका भव्य स्वयंवर ।
ज्ञात मुझे है तात, सिद्धिप्रद है यह अवसर ।
तो कुरू का अधिराज, देख लें काशी वासी ।
कहा भीष्म ने बने विचित्र[2] तुरंत प्रवासी ॥7॥

चिंतित मां ने कहा, वहां नरदेव[3] प्रतापी ।
आएंगे न विचित्र, हो सके बल परिमापी ।
कहा भीष्म ने जननि, बात आपकी सही है ।
वीर्य शुल्क[4] की रीति, काशि में सदा रही है ॥8॥

यदि हैं विक्रम जेय, कन्यका तो तुम जाओ ।
निज प्रताप से उन्हें जीतकर ही ले आओ ।
यह न धर्म अनुकूल, जननि आचार रहेगा ।
बोले कुरू अपवाद[5], निरंतर कौन सहेगा ॥9॥

वर[6] है वर ही स्वयं, विभूषित करे स्वयंवर ।
नहीं अवर[7] है अनुज, रूप जैसे जितशंवर[8] ।
स्वयंवरा यदि सत्य, काशि नृप वे कन्या ।
पाकर मेरा पुत्र, समझती निज को धन्या ॥10॥

होती विक्रम जेय, सदा ही विक्रम शुलका ।
अरि पर गिरे सवेग, वीर नभ से ज्यों उल्का ।
काषिराज की रीति, प्रीतिकर नहीं तात है ।
वहां जुड़ा अतएव, भरत भू शूर व्रात[9] है ॥11॥

तुमही जाओ तात, बात मेरी यह मानो ।
वधू काम[10] यह हृदय, भावना को पहचानो ।
नगर अरक्षित यहां, उभयजन यदि जाते हो ।
नहीं लगेगा दोष, जीत कन्या लाते हो ॥12॥

1	lR;orh	6	J"B
2	fofp=oh; lR;orh dk NkVk i=	7	ghu
3	jktk	8	'koj uke d vlj dk ekju oky dkeno
4	cyfoØe l yMdj vkj thrdj ftl ikIr fd;k tk;	9	leg
5	fuUnk] ykd fuUnk	10	o/k dh vfHkyk"kk dju okyk

कहा भीष्म ने यही, कार्य होगा अब माता ।
काशिराज जामातृ, बनेगा मेरा भ्राता ।
सर्वसेन[1] की सुता, काषि की सुनिधि सुनंदा[2] ।
बनी भरत की वधू, पूर्व में कुरू आनंदा ॥13॥

कुछ सैनिक ले साथ, देवव्रत चले महारथ ।
यह विचित्र अभियान, न मन को सूझ रहा पथ ।
आज्ञा पालन हेतु मात्र कातर जननी की ।
यात्रा थी प्रारंभ, कुमन से मानधनी की ॥14॥

शंकित था मन आज, हास का पात्र बनूंगा ।
महारथी जगमान्य, कुहारक मात्र बनूंगा ।
नहीं कहीं से उचित, कर्म यह मान हरण का ।
बन जाएगा स्त्रोत, यही मम कीर्ति क्षरण का ॥15॥

अंगज[3] मोहाविष्ट, किंतु साग्रह महिषी का ।
बने प्रबोधक कोन, कहॉ अधिकार किसी का ॥
सुत है दुर्बल देह, तदपि द्रुततर परिणय को ।
हो अधीर प्रक्षिप्त, कर दिया देखों नय को ॥16॥

हरपुर से हर शीघ्र, काशि नृप की दुहिता को ।
चित्रवीर्य[4] परिणीत, करो तुम राजसुता को ॥
है इसमें ही भूति[5], भीष्म कुरू के अन्वय[6] की ।
उससे संभावना, नहीं काशी में जय की ॥17॥

और नहीं है मार्ग, तुम्ही विक्रम दिखलाओ ।
पुन: पूर्ववत मान, पौरवों को दिलवाओ ॥
तुमने अनुज विचित्र, सदा सुतवत ही माना ॥
उसके हित को देख, तुम्हे है काशी जाना ॥18॥

1 jktk Hkjr d le; dk'kh ij jkT; dju oky uifr	4 fofp=oh; lR;orh dk NkVk i=
2 dk'khuj'k dh i=h tk Hkjr dh efg"kh cuh	5 dY;k.k
3 i=	6 o'k

अत: निंद्य[1] यह कृत्य, विवष मुझको करना है ।
काशिराज की सुता, नृपति सम्मुख हरना है ॥
शीघ्र स्वयंवर सभा, घोर रणभूमि बनेगी ।
पर क्या ऐसी विजय, कीर्तिदा[2] कभी बनेगी ॥19॥

अहंकार या स्वार्थ, मनुजता के मारक हैं ।
नीति-रीति या प्रीति, सभी के उत्सारक[3] हैं ॥
लेता है बहु तर्क, खोज नर स्वार्थ सिद्धि के ।
दिखलाने बहु वर्ण, जगत को छद्म ऋद्धि के ॥20॥

है यह कैसा ब्याह, तदपि स्वीकार्य यहॉ है ।
तरूणी मन भावना, अरे सत्कार्य कहॉ है ॥
चिर रिपुता संबंध, जुडेगा क्या काशी से ।
छीन रहा सर्वस्व, सुता-हित-अभिलाषी से ॥21॥

परिणय अष्ट प्रकार, मान्य मनु ने बतलाए ।
किंतु स्वयंवर युद्ध, मात्र क्षत्रिय को भाए ।
बल विक्रम से विजित, वधू को माना उत्तम ।
जिसके हित अशुहानि, मानते शुभ नृपसत्तम[4] ॥22॥

क्या न कहेंगी जननि[5], यही सुरगुरू[6] शिक्षा है ।
असुरवृत्ति से श्रेष्ठ, मॉगना नित भिक्षा है ।
यही बचा सुप्रयोग, भार्गवी[7] दिव्य कृपा का ।
आता अंतर[8] मध्य, नहीं क्यों भाव त्रपा[9] का ॥23॥

तभी व्याध से दिखी, अनुद्रुत[10] भीत कुरंगी[11] ।
कृपाविष्ट[12] थे भीष्म, देखकर कातर भंगी ॥
किया गरज कर विरत, व्याध कंपित हतप्रभ था ।
क्षण में प्रकटित वहॉ, मनुजता का वैभव था ॥24॥

1 fuUnuh;	7 ij'kjke dh
2 ;'k nu okyh	8 ân;
3 nj gVku oky	9 yTtk
4 J"B jktk	10 ftldk ihNk fd;k tk jgk Fkk
5 xxk	11 exh
6 ogLifr	12 n;kl nfor

दिया न उसको दंड, रोष बदला विषाद में ।
अंतर मुझमें नहीं, और इस लघु निषाद में ।
क्या मैं भी हूं नहीं, अनघ[1] हत्यार्थ समुद्यत ।
क्या कुकर्म हित नहीं, कर रहा आयुध उद्यत ॥25॥

मन में विविध विचार, शुकावलि[2] से उड़ते थे ।
कभी दृष्य से भीष्म, कभी मन से जुड़ते थे ॥
दिखी शावती3 पुरी, मुक्तिदा[4] शिव का आलय ।
जिसमें सकल विकार, पाप भय पाते हैं लय ॥26॥

पहुंचे प्रांगणमध्य, जहां वर चयन विहित था ।
रम्य रमा[5] संवलित, जहॉ उत्साह निहित था ॥
देख उन्हें आसन्न[6], उठे आसन से भूपति ।
बोले वे कृत नमन, पधारें मानित कुरूपति ॥27॥

अम्बा सबसे बड़ी, अम्बिका प्रिय अनुजा है ।
अम्बालिका कनिष्ठ,चारू मेरी तनुजा है ॥
हैं शुभ लक्षण युक्त, वरण की अभिलाषा से ।
आए भूभृत मान्य, मनस्वी हर आशा[7] से ॥28॥

केवल वह नृप यहॉ, वरण का है अधिकारी ।
जिसका करदे धाम[8], तिरस्कृत नृपता[9] सारी ।
मम तनुजा सिहिनी, सिंह सम वर विक्रमयुत ।
पायेंगी जब तभी, पिता यह होगा उपकृत ॥29॥

बोले सुरसरि तनय[10], ज्ञात हमको काशी की ।
रीति व्याह की यही, पराक्रम विश्वासी की ।
पुरश्री वर्धनक्षमा, किन्तु काशी वालाएं ।
लगती हमको हानि, अपरपुर[11] में यदि जाएं ॥30॥

1 fu"iki
2 rkrk dk >M
3 fpjdky l fLFkr
4 efDr nu okyh
5 y{eh] 'kkHkk
6 ikl fLFkr
7 fn'kk
8 rt
9 jktox
10 xxki= Hkh"e
11 nlj uxj

चिंतित देखे भूप, देवव्रत विहंसे मन में ।
ये भी तुच्छ विकार, देखते क्या इस जन में ।
होने दो यह नाटय, दृष्ट जब विपुल फलोदय[1] ।
होगा होंगे समुद्र[2], मान यह काशि अभ्युदय[3] ॥31॥

देख भीष्म को वहां, कई नरपति मुस्काए ।
कन्यारूपाकृष्ट, पलितधर[4] भी हैं आए ।
बोले धीरे अन्य, न नारदवत ही गति हो ।
वृध्द वीर को प्राप्त, हरि कृपा से सन्मति हो ॥32॥

करते कुछ उपहास, परस्पर यह कह कहकर ।
काम भाव दुर्दम्य, उठा करता रह-रहकर ।
लगता है अब टूट, रहा इंद्रियजय सपना ।
कन्या को अतएव, बनाने आए अपना ॥33॥

हुए देखकर उन्हे, काशिनृप भी चिंतित अति ।
भास रही थी उन्हें, प्रेय दुहितात्रय की गति ।
देख अकुंठित धाम, किंतु प्रौढ़त्व समन्वित[5] ।
स्वयंवरा छिप गईं, कन्यका अचिर भयान्वित ॥34॥

बोले घनस्वर[6] भीष्म, नृपति उत्सुक सब सुन लें ।
निजपुर को प्रस्थान, बाण या मेरे चुन लें ।
विक्रमजेया सुता, त्रयी नृप ने बतलायी ।
अत: लिए मैं चला, तुम्हारे सम्मुख भाई ॥35॥

समझ रहा जो नृपति, वरन का अब अधिकारी ।
आए भीष्म समक्ष, शूरवर आयुध धारी ॥
साहस हो तो बने, मम क्रिया का अवरोधी ।
कन्याऐं ले चला, अवज्ञा का प्रतिशोधी ॥36॥

1 ifj.kke	4 'or d'kk oky
2 g"k;Dr	5 l ;Dr
3 mUufr	6 e?k dh xtuk t l Loj oky

उस संभ्रम में टूट, गिरी वे वर मालाएं ।
कंपित थीं अंबादि, वरणकामा[1] बालाएं ॥
थीं विमुक्त रश्मियाँ[2], चले हय[3] तीव्र पवन से ।
गूंजा हाहाकार, काशिनृपभव्यभवन से ॥37॥

आए नृप संयुक्त, रक्तलोचन[4] रक्तानन ।
परित: घेरे भीष्म, हुए त्रय शांत वरानन[5] ॥
दास राज्य[6] का युद्ध, उपस्थित पुन: यहॉ था ।
कुरू विक्रम का भान, वैरि को अभी कहॉ था ॥38॥

युगपत[7] किए प्रहार, भीष्म ने काटे क्षण में ।
ज्यारव[8] गुंजित हुआ, शत्रुभयदायक रण में ॥
फिर जो छूटे बाण, कठिन था प्राण बचाना ।
लगी मूढता उन्हें, स्वयंवर में ही आना ॥39॥

कर परिभव[9] स्वीकार, हटे पीछे नृप रण में ।
छोड़ उन्हें रथ बढ़ा, प्रतीची[10] दिक में क्षण में ॥
दिखी दूर तक तुंग, सताला[11] शुभ्र पताका ।
निर्निमेष कुरू ओर, व्यथित भूपति ने ताका ॥40॥

शाल्व गए कुछ दूर, भीष्म रथ को है रोका ।
जाते कहां मदांध, काशिजा से कर धोखा ॥
प्रायश्चित अब करो, सुगर्हित[12], रमणि हरण का ।
निश्चित किया उपाय, देवव्रत आत्म मरण का ॥41॥

यह कह किए विमुक्त, अयोमुख[13] जो शाणित[14] थे ।
विद्या के ही साथ, कोप से अनुप्राणित थे ॥
एक बाण जा लगा, बह चला रक्त बाहु से ।
तभी चले शित[15] बाण, भीष्म के तीव्र वायु से ॥42॥

1 Lo;oj dh vfHkykk"kk okyh
2 yxke
3 ?kkM
4 Øk/k l yky u=k oky
5 lUnj e[k
6 on of.kr jktklnkl d lkFk
10 jktkvk dk ;)
7 ,d lkFk
8 /ku"k dh Mkjh dk 'kCn
9 gkj
10 if'pe
11 rkM o{k d fpUg l 'kkfHkr
12 vR;Ur fufUnr
13 ok.k
14 iuk
15 iu

हुए अश्व निष्प्राण, भग्न उसका स्यंदन[1] था ।
कटा धनुष नि:शस्त्र, खडा अब नृपनंदन था ॥
नहीं प्रहार्य अहेति[2], युद्ध की नीति यही है ।
छोड भीष्म बढ गए, आर्यजन रीति यही है ॥43॥

खिची एक थी क्षीण, वदन पर आषा रेखा ।
तत्क्षण हुई विलुप्त, विजित प्रेमास्पद देखा ॥
फिर मानस पर गहन, निराशा अंबुद[3] छाए ।
दूर न दिखा नरेश, नृपसुता दृग भर आए ॥44॥

देख दृष्य यह दीन, हुए काशिपति भारी ।
क्या यह प्रण रख दिया, स्वयंवर का क्षय कारी ।
मर्दित तनुजा भाव, गयी मेरी मति मारी ।
मिला मुझे जामातृ, वृद्ध यह क्रूर प्रहारी ॥45॥

दी मैंने बलि हाय, सुता जन अधिकारों की ।
अब मेरी यह बुद्धि, पात्र बस धिक्कारों की ।
चली गयीं वे विवश, अश्रु थीं विकल बहाती ।
वृद्धवीर्यनिर्जिता[4], रणोत्थित रूधिर नहाती ।46॥

राजवंश का आज, सकल सम्मान गया है ।
बल वैभव का अमित, उग्र अभिमान गया है ॥
कृपा क्यों नहीं हुई, सदय अति विश्वनाथ[5] की ।
सुतात्रयी अपहृता, गई रोती अनाथ सी ॥47॥

गंगा वरूणा और, असी[6] की त्रयी गई है ।
स्मृति देती हर एक, मुझे वेदना नई है ॥
महिषी दशा विलोक, हृदय मेरा फटता है ।
दुश्चिंता में सतत्, समय मेरा कटता है ॥48॥

1 jFk	4 c< 0;fDr d foØe l thrh xb
2 fuh'kL=	5 f'koth
3 e?k	6 vlh unh

होती थी संचरित, पुरी में अपर त्रिवेणी ।
अमल हास द्युतिमान, भवन उपवन की श्रेणी ॥
लगता जैसे मौन, विकल प्रासाद[1] धरे हैं
है विषाद विष प्रसृत, क्षोभ से चित्त भरे हैं ॥49॥

आभरतोदय[2] मान्य, रहे कुरू अखिल जगत में ।
कर अप्सरा प्रणीत, गिरे दुष्यंत विगत में ।
धीवर तनया उदित, आज यह वंष चलेगा ।
कबतक यह कुरू दृप्त, स्वयं को मूढ छलेगा ॥50॥

नारी पर आसक्ति, वंष में नई नहीं है ।
नाहुष प्रवर्तित रीति, अभी तक गई नहीं है ॥
बने स्वर्ग में हेतु, अकारण शचीव्यथा[3] के ।
ज्ञाता हैं अधिसंख्य[4], लोक में हीन कथा के ॥51।

रहता पातकहीन, चन्द्रमा हर तारा को ।
रोते हैं पुरूरवा, अमरपति[5] की जारा को ॥
थे दुष्यंत कृतार्थ, मेनकाजाता[6] को पा ।
विष पादप अन्ततः, वीर शान्तनु ने रोपा ॥52॥

दास राज की सुता, सुरभि मोहित ले आए ।
वंचित किया सुपुत्र, विगुण आसन बैठाए ॥
वयाधिक्य में किया, भी सुता हरणादिक दृष्कृत ।
जो अब तक थे, रहे क्षत्रगण मध्य पुरस्कृत ॥53॥

आभिजात्य[7] आग्रही, प्रयत[8] अन्वय[9] अन्वेषी ।
कौन समर्थ मनुष्य, बनेगा दुहिताद्वेषी[10] ॥
रूपशक्ति संपदा, शील की क्या समता को ।
पा सकता क्या, असत सत्य की सक्षमता को ॥54॥

1 jktegy	6 'kdUryk
2 jktHkjr d vkxeu rd	7 dyhurk
3 bUn dh iRuh dh ihMk	8 ifo=
4 cgr l	9 o'k
5 bUn	10 i=h l }"k dju okyk

रहता कौन न दूर, सार से हीन कूप से ।
अपनी ही संतान, बांधता कौन यूप[1] से ॥
परंपरा अनुसरण, हुआ मुझको अतिघातक ।
नहीं प्रषोधनयोग्य, हुआ मुझसे जो पातक ॥55॥

किया वधस्थल घोर, प्रयत मंडप स्ववरण[2] का ।
सफल हुआ तव यत्न, भीति के ही प्रसरण का ॥
अशरण[3] सी ले चले, अंबिका को अंबा को ।
आया क्यों न अमर्ष[4], पूजिता जगदंबा को ॥56॥

रोको देवापगे[5], तुम्ही उद्दंड तनय को ।
क्यों सहती हो मूक, कीर्ति घातक अविनय को ॥
पक्षपात होगा न, उचित तुमको हे माता ।
विषम पाप से सदा, रहीं जग की तुम त्राता ॥57॥

रज उड़ रथ के साथ, मार्ग में यों चलती थी ।
सुता वदन पर धरा, ज्यों कि ऑचल झलती थी ॥
किंतु हुआ अवरूद्ध, पुरी का उससे दर्शन ।
मानो दुख से ढॉक, लिया ऑचल से आनन ॥58॥

अब तक है कांतार[6], जगत यह ज्ञात नहीं था ।
स्वप्निल था संसार, सत्य प्रतिभात नहीं था ॥
कोरे नय सिध्दांत, शक्ति की ही चलती है ।
प्रीति यहॉ परतंत्र, भावना कर मलती है ॥59॥

क्रूर पुरूष की भोग्य, वस्तु अब तक रमणी है ।
कथन मात्र को रहा, देश भामिनी ऋणी है ॥
अबला अबला सदा, यहॉ परवान[7] विवश है ।
वपु तक सीमित रहा, पुरूष का उसमें रस है ॥60॥

1 cfy i'k dk cU/ku dk LrEHk	5 xxk
2 Lo;oj	6 xgu ou
3 vukFk	7 ijr=
4 dki	

पा सकता है मात्र, देह नर निज पशु बल से ।
है अनुराग अमूल्य, नहीं मिलता यह छल से ॥
सृजित न होता प्रणय, शरासन से बाणों से ।
उठता यह मृदु गीत, स्वत: निर्मल प्राणों से ॥61॥

तो भी सकते तोड़, इंद्र-धनुषी सब सपने ।
कर सकते हो दूर, उन्हें जो मन से अपने ॥
मात्र एक पा रहा, यहॉ जीवन उपवन क्षय ।
जीवात्मा है अमर, प्रेम शाश्वत है क्या भय ॥62॥

स्वयं वरण अधिकार, आर्य कन्या का छीना ।
कर दी नृप की सुता, मात्र क्षण भर में दीना ॥
शांतनु के हो पुत्र, यही क्या तुम्हें उचित है ।
कुरू अवनति इतिहास, नव्य[1] यह भीष्मरचित है ॥63॥

दाषसुता सौन्दर्य, विमोहित थे अति पौरव ।
विफल मनोरथ हुए, प्रथम था जीवन रौरव ॥
बल प्रयोग संकल्प, उठा क्या नृप के मन में ।
चक्रवर्ति की नहीं, अनास्था होती जन में ॥64॥

बोले नतशिर भीष्म, सत्य कहती हो बेटी ।
विपुल सत्य मम बनी, मात्र कुरूजन की चेटी ।
कुरूमहिषी पद काम्य, तुम्हें कुछ भान नहीं है ।
जगत पृथित कुरू कीर्ति, किसे यह ज्ञान नहीं है ॥65॥

मेरा अनुज गुणज्ञ, सुशोभन उर का सच्चा ।
कुछ दिन में ही तुम्हें, लगेगा गजपुर अच्छा ।
सबके सुख में सदा, नदीसुत[2] सौख्य निहित है ।
करो क्षमा यह कृत्य, नहीं कुछ शास्त्रविहित है ॥66॥

1 uohu 2 Hkh"e

लगा भीष्म का शौर्य, हेय अति इस उपक्रम में ।
नहीं हमारा चित्त, देवि कुछ भी है भ्रम में ।
मात्र नियति का खेल, विडंबित[1] गंगासुत है ।
प्रतिश्रुति[2] का यह दास, दंड को भी प्रस्तुत है ॥67॥

तुम त्रिदेवि सी रहो, बने गृह स्वर्ग तुम्हारा ।
कुरू अन्वय उत्कर्ष, बने अपवर्ग[3] हमारा ।
गजपुर में भी तुम्हें जनकवत स्नेह मिलेगा ।
म्लान अभी उरजलज, समय के साथ खिलेगा ॥68॥

जैसे ही यह सुना, वीतषोका[4] कन्या थीं ।
शंका से निर्मुक्त, हुईं सद्यः[5] धन्या थीं ।
देखा भीष्म प्रताप, और अब गजपुर शोभा ।
देखी कुरू की वृत्ति, परम निष्पाप अलोभा ॥69॥

अब रहस्य था ज्ञात, जिन्हें गजपुर में आकर ।
कुसुम सदृश खिल उठीं, कन्यका वर को पाकर ।
देवोपम था रूप, युवा शांतनु नंदन[6] का ।
सुरभित था प्रासाद, भाग ज्यों हो नंदन[7] का ॥70॥

गंधवती[8] वात्सल्य, अपरिमित जननी जैसा ।
और जनकवत स्नेह, भीष्म का था कुछ ऐसा ।
नवग्रह में नववधू, दिवस त्रय में ही प्रमुदित ।
हुईं सारिका मुखर, मोद अब रहा न अनुदित[9] ॥71॥

त्यागा नहीं विषाद, किंतु उनमें ज्येष्ठा ने ।
प्रमथित सा कर दिया, चित्त पूर्वानिष्ठा ने ।
आपगेय[10] से पुनः, सलज्जा बोली अंबा ।
शाल्वकल्पतरू मात्र, रागलतिका अवलंबा ॥72॥

1 Bxk x;k	6 fofp=oh;k
2 ifrKk	7 bUn dk miou
3 dk; flf)] ekf{k	8 lR;orh
4 'kkd jfgr	9 vudgk
5 rjUr	10 Hkh"e

करती अर्पित हृदय, सकृत जीवन में कन्या ।
कुरू अन्वय हित हेतु, बना दी गई अधन्या ।
नहीं शाल्व अतिरिक्त, पुरूष कांक्षित हो सकता ।
मृत्युवरण स्वीकार्य, न मन लांछित हो सकता ॥73॥

दस्युवृत्ति कुरूश्रेष्ठ, गई कैसे अपनाई ।
झौंक रहा है तुम्हें नरक में दुर्बल भाई ॥
तुम कुपात्र हित व्यर्थ, जुटाते सुख के साधन ।
इस प्रयास में सतत, कर रहे अनयाराधन[1] ॥ 74॥

बोले कुरू सविषाद, हुआ अघ[2] अनजाने में ।
है देवी कल्याण, शाल्वपुर पहुंचाने में ।
किया सरक्षक विदा, स्वयं की ज्यों तनया हो ।
अंबा चली समोद, सौख्य अनुभूत नया हो ॥75॥

पुत्रीद्वय संदेष, काशिपति ने जब पाया ।
भूल गए सब रोष, दैन्य की अपगत[3] छाया ।
दुख था केवल उन्हें, ज्येष्ठ तनुजा अंबा का ।
करते थे नित ध्यान, कुषल हित जगदंबा का ॥76॥

1 vuhfr dh itk 2 iki 3 nj